वीर संवत २४९२, फाल्गुन शुक्ल ९, मंगलवार
दि. ०१-३-१९६६, ढाल-५, श्लोक-१,२,३. प्रवचन नं. ३९

('छहढाला') की पाँचवी ढाल का, पहला श्लोक।

मुनि सकलव्रती बड़भागी भव-भोगनतैं वैरागी;
वैराग्य उपावन भाई, अचिन्तैं अनुप्रेक्षा भाई।।१।।

क्या कहते हैं ? आत्मा नित्यानन्द स्वरूप, नित्यानन्द आत्मस्वरूप। स्थायी आत्मा नित्य है, उसमें दृष्टि लगाकर, उसमें स्थिर रहना वही आत्मा का मार्ग है। उसमें यह बारह भावना भानी, वह वैराग्य को उत्पन्न करनेवाली यह भावना है। समझ में आया ? आत्मा नित्यानन्द प्रभु, सच्चिदानन्द प्रभु, सच्चिदानन्द आत्मा नित्य (है)। उसकी स्थायी दृष्टि करने को अन्तर पुरुषार्थ करना और उस पुरुषार्थ में इन बारह भावनाओं को भाना। मुनि होने के पहले भी भावना करना और मुनि होने के बाद भी भावना करना। उसका नाम यहाँ बारह भावना का स्वरूप का वर्णन करते हैं।

आत्मदर्शन सम्यग्दर्शन आत्मानुभव, उसका भानपूर्वक श्रावक को स्वरूप में शान्ति के अंश की वृद्धि हुई है, उनको बारह व्रत का विकल्प उत्पन्न होता है, वह बात आ गई। अब पाँच महाव्रत आदि मुनि के व्रत होते हैं। अतीन्द्रिय आनन्द का अन्तर शान्ति बहुत उत्पन्न हो गई हो। वह कहते हैं, देखो !

'**हे भव्य जीव ! महाव्रतों के धारक भावलिंगी मुनिराज...**' आत्मा में, अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप आत्मा, उसका अन्तर उग्र अनुभव हुआ है। समझ में आया ? उसको मुनि कहते हैं। सम्यग्दर्शन में आत्मा, पुण्य-पाप का रागरहित अुभव में अल्प आनन्द आया है और श्रावक होता है, तब विशेष अतीन्द्रिय आनन्द की शान्ति विशेष हुई और मुनि होते हैं, उनको अतीन्द्रिय

आनन्द उग्ररूप से होता है। प्रचुर स्वसंवेदन (होता है)। समझ में आया ? प्रचुर स्वसंवेदन। आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द प्रभु है। सच्चिदानंद आत्मा है। सत् शाश्वत (है), उसके अतीन्द्रिय आनन्द में से एकाग्र होकर प्रचुर आनन्द का अपना वेदन हुआ है, उसको मुनि कहने में आता है। ओ..हो... !

वे मुनि महाव्रतों के धारक हैं। सकलव्रती। पहले श्रावक में देशव्रती की व्याख्या की। उनको पाँच महाव्रत हैं। मुनि, '**भावलिंगी मुनिराज महान पुरुषार्थी हैं,...**' देखो ! ओ..हो..हो... ! आत्मा आनन्द की भूमि, आनन्द की भूमि, अतीन्द्रिय आनन्द की भूमि में बहुत लीन हो गये हैं। इतना पुरुषार्थ मुनिराज को अन्तर आनन्द में आता है। समझ में आया ?

मुमुक्षु :- महान पुरुषार्थ क्यों कहा ?

उत्तर :- महान पुरुषार्थ कहा न ? श्रावक का अल्प पुरुषार्थ है, मुनि को महान पुरुषार्थ है। सम्यग्दृष्टि को और श्रावक को अल्प पुरुषार्थ है, मुनि की अपेक्षा से।

मुमुक्षु :- महान में क्या कहना है ?

उत्तर :- महान नाम उग्र, पहले कहा न ? प्रचुर स्वसंवेदन। वह शब्द तो कहा। उग्र आनन्द का पुरुषार्थ से उग्र आनन्द प्रगट किया। आत्मा तो अतीन्द्रिय आनन्द का भंडार है, अतीन्द्रिय आनन्द की निधि है, उसको खोजकर प्रचुर उग्र महान पुरुषार्थ द्वारा अतीन्द्रिय आनन्द को पर्याय में जिन्होंने प्राप्त किया है। आहा..हा... ! समझ में आया ?

मुमुक्षु :- बड़भागी..

उत्तर :- बड़भागी पुरुषार्थ। वे बड़भागी हैं। वास्तव में पुण्यशाली भी वे हैं और महान पुरुषार्थी भी वे हैं। समझ में आया ? आहा..हा... ! वह तो समकित की बात की, सम्यग्ज्ञान की बात की, बाद में देशव्रत की कही, अब सर्वविरति की बात चलती है। चार ढाल तो पूरी हुई, यह पाँचवी ढाल चलती है।

प्रत्येक में अपना आत्मा सच्चिदानन्द अतीन्द्रिय आनन्द, उसके अनुभव में सम्यग्दर्शन हुआ हो और आत्मा का ज्ञान हुआ हो तो उसे धर्म की प्राप्ति हुई और बाद में श्रावक (दशा) की

प्राप्ति (हुई)। समझ में आया ?

मुमुक्षु :- श्रावक तो जन्म से होते हैं।

उत्तर :- श्रावक जन्म से होते हैं ? कोई कहता है कि, जैनकुल में जन्म लिया तो श्रावक हो गया। ऐसा है ही नहीं। श्रावक कोई सम्प्रदाय की चीज नहीं, वह तो वस्तु के स्वरूप की चीज है। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दमय सच्चिदानंद धाम है, उसकी अन्तरदृष्टि करके विशेष शान्ति की, आनन्द की प्राप्ति होना उसका नाम श्रावकपना वास्तव में गिनने में आया है। आहा..हा...! भैया ! महान पुरुषार्थ... ओ..हो...! मुनि पंच परमेष्ठी में मिल गये। जिनको गणधर नमस्कार करे-णमो लोए सव्व साहूणं। करे कि नहीं ? गणधर चौदह पूर्व की रचना करते हैं, संत, जो संतों के अग्रेसर मुनि गणधर, वे भी जब बारह अंग की रचना करते हैं (उस समय बोलते हैं), णमो लोए सव्व साहूणं। हे संत ! तेरे चरण में मेरा नमस्कार। गणधर का जिसके चरण में नमस्कार पहुँचे वह मुनिपना कैसा है ? आहा..हा...! समझ में आया ?

पाँच नमस्कार (का) रटन करते हैं न ? गणधरदेव चौदह पूर्व की रचना करते हैं या नहीं ? 'गौतमस्वामी' ने की। भगवान के पास बिराजते हैं, महाविदेहक्षेत्र में 'सीमंधर' भगवान के पास गणधर बिराजते हैं। वे गणधर जब बारह अंग की रचना करते हैं (तब बोलते हैं), णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आईरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं। अढ़ाई द्वीप में जितने संत महाव्रतधारी भावलिंगी आत्म-आनन्द में झूलनेवाले, ऐसे छठे-सातवें गुणस्थान में मुनि बिराजते हैं, उनको मैं नमस्कार करता हूँ। गणधर उनको नमस्कार करे के नहीं ? वह मुनिपना कैसा है ?

मुमुक्षु :- अतन्द्रिय कहा न ?

उत्तर :- अतीन्द्रिय कहो, (कहते हैं), ठीक ! आत्मा कहो या अतीन्द्रिय कहो। यह जड़ है, वह तो इन्द्रिय से ग्राह्य है, आत्मा अतीन्द्रिय ग्राह्य है। मूल अभी अन्दर बहुत धुआँ (-विपरीत अभिप्राय) घसू गया है। अभी प्रश्न आया है। भाई ! यह आत्मा अतीन्द्रिय स्वरूप है, इन्द्रिय से ग्राह्य (नहीं होता)। इन्द्रिय से आत्मा ग्राह्य होता है ? ये तो जड़ मिट्टी है। उससे लक्ष्य करते हैं तो रूपी पदार्थ लक्ष्य में आते हैं।

आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द पड़ा है। इन्द्रिय से मानता है कि, मुझे सुख है, वह तो दुःख है। शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, में हम सुखी है - (ऐसा मानता है)। वह तो मूढ़ है। मान्यता करता है। सुख तो आत्मा में है। पर में सुख है ? समझ में आया ? सम्यग्दृष्टि पाँच इन्द्रिय के विषय में सुख नहीं मानते। आसक्ति होती है, परन्तु सुख नहीं मानते। अस्थिरता होती है, सुख मानते नहीं। सुख तो अपने आत्मा मे अतीन्द्रिय आनन्द पडा है। ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द की रुचि, दृष्टि अनुभव हुआ, बाद में आसक्ति रहती है। आसक्ति आंशिक कम होती है और अपना अतीन्द्रिय आनन्द थोड़ा बढ़ता है, उसको श्रावकपना कहने में आता है, और सब आस्कति नाश होती है और सर्वविरति अन्तर अतीन्द्रिय आनन्द की पुष्टि बहुत होती है, उसको मुनिपना कहते हैं। समझ में आया ? आहा..हा... ! वह तो कहते हैं, देखो !

'**महान पुरुषार्थी...**' सन्त तो आत्मा अकेला, उदास.. उदास.. दुनिया से उदास। श्रावक को भी सन्यग्दर्शन होनेपर भी अभी थोड़ी आसक्ति है। स्त्री, कुटुम्ब-परिवार के प्रति प्रेम है। रुचि नहीं है कि, वे मेरे सुख का कारण है, राग आया वह सुखरूप है-ऐसी दृष्टि नहीं (है)। उस आसक्ति का अंश कम होता है, वह श्रावक (है)। उस आसक्ति की सर्वथा विरति-निवृत्ति होती है, वह मुनि (है)। समझ में आया ? दृष्टि में तो पहले से सम्यक् हुआ है।

मुमुक्षु :- दृष्टि की बात बहुत करनी पड़ती है।

उत्तर :- लेकिन दृष्टि बिना, द्रव्य के भान बिना कहाँ ठरना ? समझ में आया ?

मुमुक्षु :- संसार ?

उत्तर :- संसार राग, द्वेष, अज्ञान (है)। संसार पूछा न ? भैया ! आत्मा आनन्दकन्द सच्चिदानन्द शुद्ध आनन्द प्रभु है, उसमें से निकलकर विकार पुण्य-पाप भाव उत्पन्न करना और पुण्य-पाप भाव मेरा है, ऐसा मिथ्यात्व (उत्पन्न करना) उसका नाम संसार (है)। संसरणं इति संसारः। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का पिंड प्रभु, उसमें से संसरण-हट जाना, हट जाना, हटकर विकार को अपना मानना, परवस्तु को अपना मानना, पुण्य-पाप में मीठास-आनन्द है-ऐसा मानना वह मिथ्यात्व भाव और राग-द्वेष, संसार है। समझ में आया ? ऐ..इ... ! संसार भूल है न ? तो आत्मा की भूल आत्मा में रहती है या बाहर रहती है ? संसार कहाँ बाहर

रहता है ? बाहर तो जड़ है, वह तो परद्रव्य है। अपना आत्मा मुक्तस्वरूप है। वस्तु मुक्त आनन्दमूर्ति आत्मा है। उसकी रुचि छोड़कर पर मेरा, मैं उसका ऐसा मान्यता और इष्ट-अनिष्ट देखकर राग-द्वेष करना, ये राग-द्वेष और मिथ्यात्वभाव जो अपनी पर्याय-अवस्था में स्वरूपमें से हटकर विकार में आया, वही संसार (है)। इस संसार की रुचि छोड़कर आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द की रुचि करना उसका नाम सम्यग्दर्शन है। पीछे संसार की आसक्ति का भाव रहता है, परन्तु संसार सुखरूप है-ऐसी बुद्धि धर्मी को नहीं रहती है। समझ में आया ?

संसार विकार में सुखबुद्धि है, वह मिथ्यात्वरूपी संरार और आसक्ति (है) वह भी चारित्र के दोष का संसार (है)। पहले आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दमूर्ति है-ऐसी अनुभव दृष्टि हुई तो पुण्य-पाप के भाव में सुख है-ऐसी बुद्धि हट जाती है परन्तु पुण्य-पाप भाव हटता नहीं। समझ में आया ? तो इतने अपरिमित संसार का नाश सम्यग्दृष्टि ने किया। समझ में आया ? शुद्ध भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द प्रभु, उसके अनुभव में (आया कि), यह आत्मा आनन्द है-ऐसी दृष्टि की तो पुण्य-पाप के भाव में सुखबुद्धि थी, वह मिथ्यात्व था, अपरिमित अनन्त संसार था, उस अनन्त संसार का, आत्मा अतीन्द्रिय है-ऐसी दृष्टि करके अपरिमित संसार का छेद कर दिया। समझ में आया ? और परिमित राग-द्वेष रहा, मर्यादित राग-द्वेष रहा। उस मर्यादित राग-द्वेषमें से भी आंशिकरूप से आसक्ति को हटाकर स्वरूप में स्थिरता का अंश प्रगट करना, उसका नाम श्रावकपना पंचम गुणस्थान कहने में आता है। उस आसक्ति का सर्वथा अभाव करके स्वरूप में निवृत्ति में विशेष लीन होना, उसका नाम मुनिपना, पर का त्याग, संसार का त्याग अर्थात् विकार की रुचि और आसक्ति का त्याग (हो गया)। थोडा विकल्प रहता है, उसका ज्ञान करते हैं, उसका नाम मुनिपना कहते हैं। आहा..हा...! समझ में आया ? दुनिया से अलग चीज है। दुनिया मानती है, (ऐसा नहीं है)।

यह देह तो जड़ है, उसमें संसार है ? यह तो मिट्टी है। स्त्री-पुत्र पर है, उसमें संसार है ? वह संसार हो तो मृत्युकाल में सब पडा रहता है। समझ में आया ? यदि वह संसार हो, स्त्री, कुटुम्ब (संसार हो तो) मृत्युकाल में सब पडा रहता है, (जीव स्वयं) चला जाता है। तो संसार पडा रहा, मुक्ति हो जायेगी। वह संसार है ही नहीं। संसार उसकी मान्यता में और राग-द्वेष में संसार पडा है। सब पडा रहता है। शरीर पडा रहता है। चला जाये। संसार लेकर चला जाये।

अपनी मिथ्यारुचि और राग-द्वेष की आसक्ति लेकर चला जाता है, वही संसार है। समझ में आया ? आहा..हा... ! साथ में गया, संसार यहाँ थोड़ा पडा रहा ? स्त्री-पुत्र संसार था ? वह संसार (यदि हो तो) ये सब यहाँ पडे रहे तो मुक्ति हो गई। ऐसा है नहीं। समझ में आया ?

कहते हैं कि, मुनि... सम्यग्दृष्टि से श्रावक ऊँचे हैं, श्रावक से मुनि ऊँचे हैं, क्योंकि आसक्ति बहुत घट गई। '**(बड़भागी) महान पुरुषार्थी हैं, क्योंकि (भवभोगनतैं वैरागी...)**' भव अर्थात् संसार। देखो ! उसमें साथ में शरीर लेना। संसार, शरीर और भोग से '**विरक्त होते हैं...**' संसार, रागादि में बहुत विरक्त हैं, भोग से विरक्त हैं, शरीर से भी विरक्त हैं। अन्तर अतीन्द्रिय आनन्द में, विपति में लीन हैं। अतीन्द्रिय आनन्द भगवान आत्मा, उसमें आनन्द की बाढ़ आती है। मुनि को अतीन्द्रिय आनन्द की बहुत बाढ़ आती है। उसमें लीने हैं। अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद बहुत लेते हैं। वे संसार, शरीर और भोगों से वैरागी हैं। समझ में आया ?

'**और वीतरागता को उत्पन्न करने के लिये...**' देखो ! मुनि अथवा मुनि होने से पहले वीतरागता को उत्पन्न करने के लिये '**माता समान बारह भावनाओं का चिंतवन करते हैं।**' बारह भावना माता समान हैं। है न ? '**वैराग्य उपावन भाई...**' वैराग्य उत्पन्न करने की माता। भगवान आत्मा की शुद्ध सन्मुख अतीन्द्रिय दृष्टि हुई है तो बाद में जो आसक्ति है, उसे हटाने को बारह भावना मुनि अथवा मुनि होने से पहले श्रावक भी बारह भावना भाते हैं। कहो, समझ में आया ? देखो !

भावार्थ :- 'पाँच महाव्रतों को धारण करनेवाले भावलिंगी मुनिराज महापुरषार्थवान है,...' संसार में गृहस्थ को, श्रावक को इतना पुरुषार्थ नहीं (है)। '**क्योंकि संसार, शरीर और भोगों से अत्यन्त विरक्त होते हैं...**' स्पष्टीकरण के लिये शरीर डाला है। पाठ में '**भव-भोगनतैं**' है ना ? '**और जिस प्रकार कोई माता पुत्र को जन्म देती है...**' माता कोई पुत्र को जन्म देती है, '**उसी प्रकार यह बारह भावनाएँ वैराग्य उत्पन्न करती हैं...**'

वैराग्य.. वैराग्य.. 'क्षण लाखेणी जाये...' माता ! हे माँ ! जब दीक्षित होता है न ? माता-पिता आज्ञा नहीं देते हैं तो कहते हैं, माता ! मेरी क्षण लाखेणी जाये। मेरे स्वरूप की सावधानी करने में एक क्षण लाखेणी जाती है। (अर्थात्) लाख रूपये, करोड़, अबज, अनन्त

रूपये दे (तो भी) एक क्षण नहीं मिलती। ऐसा हमारा जन्म और अपने स्वरूप में सावधानी करने का काल (कीमती है)। मताा ! आज्ञा दो, आज्ञा दो। अपनी स्वरूप सावधानी में रहने को हम वनवास जाते हैं। समझ में आया ? गृहस्थाश्रम को छोड़कर, राग की आसक्ति घटाकर हम वनवास जाते हैं। वनवास में आनन्द का साधन करते हैं, उसका नाम मुनिपना कहते हैं। समझ में आया ? आहा..हा... ! '**मुनिराज इन बारह भावनाओं का चिंतवन करते हैं।**' पहली भावना। भावनाओं का स्वरूप बतलाते हैं।

भावनाओं का फल और मोक्षसुख की प्राप्ति का समय

इन चिन्तत सम सुख जागे, जिमि ज्वलन पवन के लागै;

जब ही जिय आतम जानै, तब ही जिय शिवसुख ठाने।।२।।

अन्वयार्थ :- (जिमि) जिसप्रकार (पवन के) वायु के (लागै) लगने (ज्वलन) अग्नि (जागै) भभक उठती है, (उसी प्रकार न बारह भावनाओ का) (चिंतत) चिंतवन करने से (सम सुख) समतारूपी सुख (जागै) प्रगट होता है। (जब ही) जब (जिय) जीव (आतम) आत्मस्वरूप को (जानै) जानता है (तब ही) तभी जीव (शिवसुख) को (ठानै) प्राप्त करता है।

भावार्थ :- जिस प्रकार वायु लगने से अग्नि एकदम भभक उठती है, उसीप्रकार इन बारह भावनाओं का बारंबार चिंतवन करने से समता (शांतिरूपी सुख प्रगट हो जाता है-बढ़ जाता है)। जब यह जीव आत्मस्वरूप को जानता है तब पुरुषार्थ बढ़ाक परपदार्थों से सम्बन्ध छोड़कर परमानन्दमय स्वस्वरूप में लीन होकर समतारस का पान करता है और अन्त में मोक्षसुख प्राप्त करता है।।२।।

'**इन चिन्तत सम सुख जागै, जिमि ज्वलन पवन के लागै;...**' देखो ! कितनी भावना भर दी है ! 'दौलतरामजी' पंडित श्रावक थे, रन्तु 'छहढाला' में गागर में सागर भर दिया है।

इन चिन्तत सम सुख जागे, जिमि ज्वलन पवन के लागै;

जब ही जिय आतम जानै, तब ही जिय शिवसुख ठाने।।२।।

देखो ! कैसी भाषा (है) ! थोड़े में-अल्प में बहुत भर दिया है। 'छहढाला' है, भैया ! 'छहढाला' तो बहुतों को कंठस्थ है। अर्थ समझे नहीं। गडिया बोले जाये, गडिया को क्या कहते हैं ? पहाडा। क्या अर्थ है ?

'**जिस प्रकार वायु के लगने से...**' हवा आती है न ? हवा। '**अग्नि भभक उठती है...**' पवन के आने से... लोगों में कहते हैं न ? 'ला त्यां वा, ला त्यां वा...' हमारे में कहते हैं। आप की भाषा में कुछ होगा। अग्नि उठती है न ? अग्नि। हवा आती है तो अग्नि भभक उठती है। ज्वाला (उठती है)। '**अग्नि भभक उठती है, (उसी प्रकार बारह भावनाओं का) चिंतवन करने से...**' आत्मा का आनन्द का भान तो पहले (हुआ) है, समझ में आया ? मेरा आनन्द मेरे में है। रागादि शुभाशुभभाव उत्पन्न होते हैं, वे दु:खरूप हैं। वस्तु दु:खरूप नहीं, चीज दु:खरूप नहीं (है)। समझ में आया ? मेरे में जितने प्रकार का राग उत्पन्न होता है, वह दु:खरूप है। मेरा आत्मा ही आनन्दरूप है। ऐसा पहले आनन्द का भान हुआ है और बारह भावना भाते हैं।

कहते हैं कि, (भावनाओं का) '**चिंतवन करने से समतारूपी सुख प्रगट होता है।**' समता कहो, वीतरागता कहो, अनाकुल रागरहित शान्ति की उत्पत्ति विशेष होती है। भावना करते हैं, अ..हो..! मेरा कोई नहीं। मैं मेरा स्वरूप शुद्ध चिदानन्द है, मैं ही मेरे स्वरूप को चूककर मुझे आसक्ति थोड़ी होती है, वह मुझे दु:खरूप है। समझ में आया ? '**चितवन करने से समतारूपी सुख प्रगट होता है।**' आत्मा में आनन्द अनाकुलस्वरूप शुद्ध है-ऐसी अनुभव में दृष्टि तो हुई है, परन्तु आसक्ति है, उसे हटाने को बारह भावना भाते है। बारह भावना का चिंतवन करने से समतारूपी सुख-वीतरागी सुख (प्रगट होता है)। पुण्य-पाप के भाव में जो दु:ख की आसक्ति थी तो यह भावना भाने से अपने स्वरूपसन्मुख में समतारूपी सुख की ज्वाला उत्पन्न होती है।

जैसे अग्नि में हवा लगने से अग्नि भभक उठती है, ऐसे भगवान आत्मा जळहळज्योति आनन्दकन्द की दृष्टि तो है और बारह भावना भाने से शान्ति की ज्वाला प्रगट होती है। समझ में आया ? यह तो अन्तर की बात है, भैया ! बाहर से कुछ है नहीं। ये तो जड़ है, मिट्टी है-धूल है। उसके साथ सम्बन्ध क्या ? वह अभी कहेंगे।

'**जब यह जीव आत्मस्वरूप को जानता है...**' देखो ! आत्मस्वरूप को जाना है और

विशेष भावना करने से विशेष स्थिरता होती है। आत्मस्वरूप को जाना है, उसे बारह भावना होती है। अज्ञानी को बारह भावना है नहीं। नित्य (स्वरूप का) तो भान नहीं। मैं नित्यानंद प्रभु स्थायी आनन्दकन्द हूँ, ऐसे भान बिना अनित्य (आदि) बारह भावना कौन भाता है ? एक ओर स्थायी आत्मा है, नित्यानन्द प्रभु है-ऐसी दृष्टि हुई है, उसको बारह भावना होती है। समझ में आया ?

मुमुक्षु :- कैसी ज्वाला होती है ?

उत्तर :- यह शान्ति की ज्वाला (है)। प्रवाह कहते हैं। प्रवाह-धारा बहे, धारा। शान्त.. शान्त.. शान्त.. मेरा स्वरूप शान्त (है)। कितनी शान्ति ! अपरिमित शान्ति। इसकी रुचि-दृष्टि में अल्प शान्ति हुई। ऐसी भावना करते-करते स्वसन्मुख में आते हैं, इतनी समता भी वृद्धि होती है। आहा..हा... ! समझ में आया ?

'**जीव आत्मस्वरूप को जानता है तब...**' जीव मोक्षसुख को प्राप्त करता है। आत्मा के आनन्द का भान नहीं, भावना किसकी करे ? जो वस्तु ही दृष्टि में आयी नहीं (तो) किसकी एकाग्रता करे ? किस में एकाग्रता करे ? भावना का वास्तविक अर्थ तो एकाग्रता है। आत्मा अनाकुल शान्तरस का स्वामी, पूर्ण आनन्द शुद्ध की दृष्टि हुए बिना उसमें एकाग्रता की भावना और समता कहाँ से आयेगी ? समझ में आया ? मात्र विकल्प करेगा। (वह तो) पुण्यबन्ध है। कोई वस्तु नहीं।

'**आत्मस्वरूप को जानता है...**' भगवान आत्मा ! आत्मा है। है तो है कैसा ? उसमें क्या स्वभाव है ? उसमें कोई स्वभाव है या नहीं ? वस्तु कोई भी है तो उसका कोई गुण है या नहीं ? गुण है या नहीं ? आत्मा है तो उसका कोई गुण है या नहीं ? उसका गुण मुख्यरूप से आनन्द और ज्ञान (है)। उसका गुण आनन्द और ज्ञान। गुण का गुण... एकाग्र होते हैं तो आनन्द और ज्ञान की वृद्धि होती है। समझ में आया ? जगत को बहुत कठिन पड़े। बाहर से ले लेना है। वस्तु बाहर में है नहीं। आहा..हा... !

आत्मा को जानता है, तभी जीव मोक्षसुख को प्राप्त करता है। क्यों ? पूर्ण सुख को कौन प्राप्त करता है ? मोक्षसुख अर्थात् पूर्ण सुख। पूर्ण सुख को कौन प्राप्त करता है ? कि, पहले

आत्मा के सुख को जान लिया है। आत्मा का सुख आनन्द अपने में है तो उसकी एकाग्रता करते -करते पूर्ण सुख प्राप्त होगा। परन्तु आत्मा का सुख और आत्मा क्या है ? उसका तो भान नहीं। समझ में आया ? आत्मस्वरूप को जानता है, तभी जीव पूर्ण मोक्षसुख, मोक्ष अर्थात् शिवसुख अर्थात् निरुपद्रव यानी पूर्ण, ऐसे पूर्ण सुख को प्राप्त करता है।

मुमुक्षु :- गुरु की कृपा बिना होता नहीं।

उत्तर :- आत्मा की कृपा बिना होता नहीं। समझे ? वास्तव में तो आत्मा आत्मा का गुरु, आत्मा आत्मा का देव (है)। ए..ई...! तब व्यवहार से बाद में कहने में आता है। ऐसी बात है, भैया ! आहा..हा...! देखो ! दृष्टान्त दिया है या नहीं ? देखो ! मुनिराज का दिया है। और यहाँ समसुख (का लिया है)। अग्नि में फूँक मारता है। सोनी भूंगली नहीं मारते ? सोनी। अग्नि जलती है। सोनी होता है न ? सोनी को क्या कहते हैं ? कारीगर, सुवर्णकार। वह भूंगली मारता है। वैसे यहाँ भगवान आत्मा शुद्ध अनाकुल आनन्द की दृष्टि हुई है उसमें बाहर भावना की फूँक मारते हैं। समझ में आया ? उसमें चित्र भी है। उसमें है ? उसमें है, चित्र भी है।

'जिस प्रकार वायु लगने से अग्नि एकदम भभक उठती है,...' वायु लगने से अग्नि भमक, प्रज्वलित.. प्रज्वलित होती है। **'उसी प्रकार इन बारह भावनाओं का वारंवार चिंतवन करने से...'** वारंवार, हाँ ! एकबार क्षणिक (विचार किया) ऐसे नहीं। वारंवार। ओ..हो...! आत्मा स्थायी आनन्द की भूमि तो तू है, ये सब अनित्य क्षणिक है। कोई शरण नहीं। ऐसे बारंबार.. बारंबार भावना करने से समता अथवा शान्तिरूपी सुख अथवा स्वभाव का अनाकुल वीतरागी सुख **'प्रगट हो जाता है।'** आत्मा का लक्ष्य करके, अनित्य, अशरणादि भावना भाते हैं, अपने में स्वसन्मुख एकाग्र होने से अपने में शान्ति, समता, अरागी पर्याय प्रगट होती है-ऐसा कहते हैं। कहो, समझ में आया ?

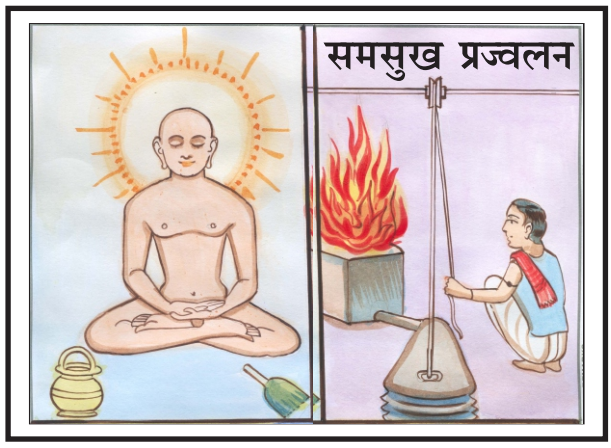

'**बढ़ जाता है।**' तब शान्ति का सुख बढ़ जाता है। '**जब यह जीव आत्मस्वरूप को जानता है तब पुरुषार्थ बढ़ाकर...**' देखो ! लगनी तब लगे। एक चीज का स्वाद आया तो वह स्वाद लेने को बारंबार चिंतवन करते हैं। ऐसे आत्मा का पहले भान हो, पुण्य-पाप का विकल्प से, शरीर से भिन्न ऐसे अपने स्वरूप का स्वाद आया हो, दृष्टि हुई तो फिर लगनी लगने का बारंबार प्रयत्न चलेगा। परन्तु वस्तु के भान बिना किसमें लगनी लगाना ? समझ में आया ?

जिसमें लगनी लगती है उसमें बारम्बार चिंतवन होता है या नहीं ? भाई ! रात और दिन राग की ज्वाला जले। राग और द्वेष, राग और द्वेष, राग और द्वेष। अनुकूल हो तो ठीक, प्रतिकूल हो तो ठीक नहीं। राग-द्वेष (करता रहता है)। चौबीस घंटे धमण चलती है, धमण। धमण समझते हो ? सुवर्णकार की.. क्या कहते हैं ? आहा..हा... ! अरे.. ! चौबीस घंटे भगवान तेरी चीज आदि अन्त नित्यानंद प्रभु की तो तुझे थोडी भी सावधानी, दरकार भी नहीं और परपदार्थ रखने को विकल्प की ज्वाला उठाता है, (वह तो) अग्नि है, ज्वाला है, कषाय है, दुःखरूप है। मानता है कि, मैं ठीक करता हूँ, वही मिथ्यादृष्टि मिथ्यात्व की पुष्टि करता है। आहा.. ! सम्यग्दृष्टि (जिसे) अपने शुद्ध स्वरूप की दृष्टि हुई है और उसकी भावना करते हैं तो शान्ति की पुष्टि करते हैं-ऐसा यहाँ कहते हैं। आहा..हा.. ! अरे.. भगवान ! समझ में आया ? बहुत अच्छी भावना लेंगे।

'**जब यह जीव आत्मस्वरूप को जानता है, तब पुरुषार्थ को बढ़ाकर...**' देखो ! '**परपदार्थों से सम्बन्ध छोड़कर...**' मुझे परपदार्थ से क्या सम्बन्ध है ? शरीर से नहीं। वह भी चलता है तो उसकी पर्याय से, मेरी इच्छा से उसमें किंचित् काम होता नहीं। बराबर है ? इच्छा है तो यह शरीर चलता है-ऐसा बिलकुल तीनकाल तीनलोक में नहीं। साँस का चलना ऐसा.. ऐसा.. सब जड़ की पर्याय जड़ के कारण जड़ में होती है। अपने से बिलकुल नहीं। बिलकुल करने से नहीं होती। चैतन्य के करने से हो तो दोनों एक हो जाये। जिसके करने से जो हो तो (दोनों) एक हो जाये। एक है ही नहीं। समझ में आया ? यह वाणी भी निकलती है, वह अपनी नहीं, आत्मा से नहीं। आहा..हा... !

मुमुक्षु :- एकान्त नहीं हो जाएगा न ?

उत्तर :- यह सम्यक् एकान्त है। जड़ की पर्याय जड़ से होती है, अपने से नहीं, उसका नाम सम्यक् एकान्त है। यह अनेकान्त है कि अपने से अपनी होती है, पर से पर की होती है। पर से अपनी नहीं होती है, उसका नाम अनेकान्त (है)। आहा..हा...! ये रजकण मिट्टी (है)। समय-समय में उसमें उत्पाद-व्यय है या नहीं ? सुना है या नहीं ? 'उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्।' 'सत् द्रव्य लक्षणं।' 'तत्त्वार्थसूत्र' में आता है ?

प्रत्येक पदार्थ, अनन्त आत्मा, अनन्त परमाणु, असंख्य कालाणु, एक धर्मास्तिकाय, एक अधर्मास्तिकाय, आकाश (ऐसी) जाति से छह द्रव्य हैं, संख्या से अनन्त हैं। प्रत्येक पदार्थ में एक सैकन्ड के असंख्यवे भाग में 'उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्' वह द्रव्य का लक्षण है। अपनी नयी पर्याय से उत्पन्न होता है, पुरानी पर्याय से व्यय होता है, सदृशता से ध्रुव रहता है। उसमें वह है, अपनी से उसमें है ? उत्पादव्ययध्रुव तो उसमें है, उसके कारण से है। समझ में आया ? आहा..हा...! लेकिन उसे अभिमान है, अभिमान। मैं कर दूँ, मैं ऐसा करता हूँ, मैं ऐसा करता हूँ। पहले मैंने शरीर को ऐसे चलाया था, अब शरीर काम करता नहीं, इच्छा के अनुसार काम नहीं करता है। पहले भी कहाँ करता था ? नहीं करता था। वह मूढ मानता था।

मुमुक्षु :- चलते थे, फिरते थे...

उत्तर :- चलता-फिरता कौन था ? देह या आत्मा ? आत्मा उसे चलाता था ? मूढ (को) सन्निपात हुआ था। सन्निपात समझे ? सन्निपात नहीं कहते ? पागल। सन्निपात होता है न ? सन्निपात। वात, पित्त और कफ रोग होता है ना ? ऐसा मिथ्याश्रद्धा, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र तीन का रोग लगा था। मैं चलता हूँ, ऐसा मानता था।

मुमुक्षु :- चलता था और अब अटक गया...

उत्तर :- चलता भी वही था और अटका भी वही है। आत्मा के कारण से चलता था ? और आत्मा के कारण से अटक गया ?

मुमुक्षु :- अटक गया उसके कारण से।

उत्तर :- उसके कारण अटक गया, चलता था उसके कारण से। आहा..हा...! अँगूली उपर करो, मरते समय नहीं कहते हैं ? क्या करे ? उसके अधिकार की बात है ? अँगूली उठनी

हो तो उठे, नहीं (भी) उठे, वह तो जड़ की पर्याय है। जड़ से भिन्न आत्मा माना ही नहीं। मूढ है। आत्मा और जड़ भिन्न है,-(ऐसा) माना ही नहीं कभी। मैं शरीर का करता हूँ। धूल का करे ? रोग क्यों आने दिया ?

मुमुक्षु :- उसको खिलाना तो चाहिए।

उत्तर :- क्या खिलाये ? धूल खिलाये ? आहार-पानी की क्रिया होती है वह तो जड़ की है। आत्मा में एक विकल्प, राग होता है, बस इतना। खाना-पीना, ऐसे चबाना वह तो जड़ की क्रिया है। आत्मा खाने-पीने का कर सकता है ?

मुमुक्षु :- मुर्दा कहाँ करता है ?

उत्तर :- मुर्दा भी करता है। मुर्दे की उत्पाद-व्यय की पर्याय मुर्दे में होती है। किस समय परमाणु में उत्पाद पर्याय नहीं होती है कि जो आत्मा उसे कर दे ? समझ में आया ? आहा..हा...! भाई ! क्या करना इसमें ?

मुमुक्षु :- ... करनो करनो..

उत्तर :- करना किसका ? पर का या अपना ? पर का करना ऊड जायेगा, अपना करना रहेगा। समझ में आया ? आहा..हा...! भाई ! एकबार विचार कर, प्रभु ! मुझे कुछ होता है। क्या होता है ? बोल न। मुझे कुछ होता है। जाने, कर सके ? क्या धूल में कर सके ? वह तो जड़ की पर्याय है। मुझे यहाँ दु:ख होता है, मुझे यहाँ मूंझवन होती है। मूंझवन को क्या कहते हैं ? मुंझारा। तुझे क्या होता है ? तुम तो जानते हो। वह जड़ में होता है। ये साँस। ख्याल आया कि साँस रुक गई। भैया ! मेरी साँस अन्दर से रुक गई है। नीचे आगे नहीं जाता, आगे नहीं जाता। उपर हो गया। नीचे ले न, तेरा अधिकार हो तो। मृत्यु के समय ख्याल में आये कि, साँस यहाँ से हट गया। ये नाभि है न (वहाँ से) हट गया, ख्याल में आया। नीचे ले। क्या ले ? तेरा अधिकार है ? वह तो जड़ की पर्याय है। आता है तो उससे और जाता है तो उससे। मूढ को जड़ की पर्याय का अभिमान अन्दर से टलता नहीं है। आहा..! आहा..हा..!

शरीर अनन्त रजकणों का पिंड (है)। पीछे आयेगा। भगवान ! उसकी पर्याय उससे (होती है)। अनित्य, अशरण आदि (भावना) लेंगे वहाँ सब लेंगे। समझ में आया ? अ..हो..!

परपदार्थों से सम्बन्ध छोड़। परपदार्थ से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं। निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध का अर्थ उस समय उसकी पर्याय जब उस कारण से होती है तो मैं निमित्त कहने में आता हूँ। निमित्त का अर्थ पृथक् ज्ञान करने की चीज है। पृथक् का कार्य करने की चीज है नहीं। समझ में आया ? आवाज धीरे से, जोर से निकलती है, क्या वह आत्मा से निकलती है ? पुद्गल की क्रिया है। आहा..हा..! तेरी निराली चीज भगवान चैतन्य-बँगले में बिराजमान है। वह जड़ में आती है ? परमाणु में घुस जाती है ?

(यहाँ) कहते हैं, भाई ! '**पुरुषार्थ बढ़ाकर...**' यहाँ मुनि की विशेष बात है ना ? परपदार्थों से सम्बन्ध छोड़। पहले दृष्टि में तो सम्बन्ध छोड़ा है, बाद में आसक्ति का सम्बन्ध छोड़ते हैं, उसका नाम उग्र पुरुषार्थ का मुनिपना कहते हैं। समझ में आया ? '**परमानन्दमय स्वरूप में लीन होकर...**' अतीन्द्रिय भगवान परमात्मा, स्वयं अतीन्द्रिय स्वरूप ही है। उसमें लीन होकर भगवान आत्मा ही परमानन्द स्वरूप है। उसका आनन्द बाहर में नहीं, राग में नहीं, शरीर में नहीं, धूल में नहीं, पैसे में नहीं। लेकिन मूर्ख हुआ है न ! कितनी मूर्खता ! पैसे पाँच लाख हुए तो मैं सुखी। उसके पास दस (लाख) है तो बड़ा सुखी (है)। मूढ है। ये तेरी गिनती कहाँ से आयी ? ऐसा तेरा अज्ञान का गज कहाँ से आया ? उसके पास पचीस लाख है तो सुखी है। मेरे पास पाँच लाख है तो मैं थोड़ा सुखी हूँ। मूढ है। परपदार्थ से तूने सुख-दुःख कहाँ से माना ? समझ में आया ?

मुमुक्षु :- सब कहते हैं उसमें क्या ?

उत्तर :- सब कहे तो क्या ? पागल के अस्पताल में सब पागल होते हैं। पागल की अस्पताल में तो सब पागल होते हैं। वह सयाना हो जाता है ? भाई ! यह साँस की क्रिया होती है, वह जड़ से होती है। भाई ! परपदार्थ का अभिमान छोड़ दे। परपदार्थ का अभिमान छोड़े बना तेरे में अहंपने की दृष्टि नहीं आयेगी। यह अभिमान छोड़े बिना मैं चैतन्य हूँ-ऐसा अहंपना की श्रद्धा का, अस्तित्व की प्रतीत नहीं आयेगी। आहा..हा..! समझ में आया ?

'**परमानन्दमय स्वस्वरूप में लीन होकर समतारस का पान करता है...**' सम्यग्दृष्टि विशेष पुरुषार्थ करके जब मुनिपना होता है तो समता का, सुधारस का बहुत पान करते हैं।

सम्यग्दृष्टि को थोड़ा सुधारस का पान है, श्रावक को थोड़ा विशेष बहुत है, मुनि को उससे उग्र है। वास्तव में तो वह आनन्द की वृद्धि का गुणस्थान है। आहा..हा...! समझ में आया ? क्या करे ? चैतन्य की जाति की महिमा नहीं। महान अनाकुल शान्तरस का पिंड मैं (हूँ), मेरी शान्ति तीनकाल में पर है नहीं। परपदार्थ का जितना लक्ष्य करके जितना विकल्प उठता है, इतना दुःख है। आहा..हा...! जितना अन्तर स्वरूप में दृष्टि करके एकाग्र होना, वही सुख है। बाकी कहीं सुख तीनकाल में है नहीं। समझ में आया ? **'समतारस का पान करता है और अन्त में मोक्षसुख प्राप्त करता है। उन बारह भावनाओं का स्वरूप कहा जाता है :-'**

१ - अनित्य भावना

जोबन गृह गो धन नारी, हय गय जन आज्ञाकारी;

इन्द्रिय-भोग छिन थाई, सुरधनु चपला चपलाई।।३।।

अन्वयार्थ :- (जोबन) यौवन, (गृह) मकान, (गो) गाय-भैंस, (धन) लक्ष्मी, (नारी) स्त्री, (हय) घोड़ा, (गय) हाथी, (जन) कुटुम्ब, (आज्ञाकारी) नौकर-चाकर तथा (इन्द्रिय-भोग) पाँच इन्द्रियों के भोग-यह सब (सुरधनु) इन्द्रधनुष तथा (चपला) बिजल की (चपलाई) चंचलता-क्षणिकता की भाँति (छिन थाई) क्षणमात्र रहनेवाले हैं।

भावार्थ :- यौवन, मकान, गाय-भैंस, धन-सम्पत्ति, स्त्री, घोड़ा-हाथी, कुटुम्बीजन, नौकर-चाकर तथा पाँच इन्द्रियों के विषय - यह सर्व वस्तुएँ क्षणिक हैं-अनित्य है-नाशवान है। जिसप्रकार इन्द्रधनुष और बिजली देखते ही देखते विलीन हो जाते हैं, उसीप्रकार यह यौवनादि कुछ ही काल में नाश को प्राप्त होते है; वे कोई पदार्थ नित्य और स्थायी नहीं है; किन्तु निज शुद्धात्मा ही नित्य और स्थायी है।

ऐसा स्वोन्मुखतापूर्वक चिंतवन करके, सम्यग्दृष्टि जीव वीतरागता की वृद्धि करता है वह 'अनित्य भावना' है। मिथ्यादृष्टि जीव को अनित्यादि एक भी भावना यथार्थ नहीं होती।।३।।

पहली भावना

जोबन गृह गो धन नारी, हय गय जन आज्ञाकारी;

इन्द्रिय-भोग छिन थाई, सुरधनु चपला चपलाई।।३।।

देखो ! सब चित्र दिये हैं। '**जोबन गृह गो धन नारी,...**' भावना भाते हैं, देखो ! '**(जोबन)...**' शरीर की युवा अवस्था। धूल की अवस्था अनित्य है। क्षण में पलट जायेगी, भाई ! तुझे मालूम नहीं। आहा..हा...!

जोबन गृह गोधन नारी, हय गय जन आज्ञाकारी;

इन्द्रिय-भोग छिन थाई, सुरधनु चपला चपलाई।।३।।

'**यौवन...**' शरीर का यौवन। माँस की कड़क अवस्था, उसका नाम यौवन कहते हैं। माँस की कड़क अवस्था। कड़क, समझे ? सखत। उसको यौवन कहते हैं। परन्तु यह यौवन कैसा है ?'**इन्द्रधनुष तथा बिजली की चंचलता-क्षणिकता की भाँति क्षणमात्र रहनेवाले हैं।**' बिजली का चमकारा आये (और) चला जाये। समझ में आया ? और इन्द्रधनुष अथवा मेघ एकदम चडे, (फिर) गिरे। इन्द्रधनुष.. क्या कहते हैं ? ... ये यौवन अवस्था.. भगवान आत्मा नित्यानन्द प्रभु की दृष्टि करके... यह यौवन अवस्था चपल है, भैया ! देखो ! पहले जोबन लिया। वह पर्याय अनित्य है। परमाणु नित्य है, उसके साथ सम्बन्ध तो यहाँ पर्याय के साथ है न ?

कहते हैं कि, '**(जोबन)...**' कैसा है ?'**इन्द्रधनुष तथा बिजली की चंचलता-क्षणिकता की भाँति क्षणमात्र रहनेवाले हैं।**' २५-२५ साल की युवान अवस्था हो, काले-काले बाल हो,। तेल डाला हो। कंगे से (बाल) बनाये हों। क्या हुआ ? हुआ वह क्षणिक था। तूने नित्य मान रखा है। वह तो पर्याय है। पर्याय नित्य कहाँ से रहेगी ? आहा..हा...! समझ में आया ? शरीर की यौवन अवस्था, बिजली की चमक होती है, बिजली की चमक क्षण में आती है और चली जाती है। (वैसे ही) यौवन अवस्था क्षण में आती है और चली जाती है। मैं कर सकता हूँ। यौवन अवस्था मैंने रखी थी। भाई ! धूल में भी नहीं रखी थी। सत्ताप्रिय प्रकृति।

मुमुक्षु :- ... किया होता था।

उत्तर :- वह करने से होता नहीं था। मूढ मान रहा था। करने से होता नहीं था, मूढ होकर मानता था। भाई ! मात्र माना था ऐसे नहीं, मूढ, पागल होकर माना था। यहाँ तो स्पष्ट बात है न ! हम दोनों भाई मिलकर करते थे। ये भाई उसके भाई को सौंप देते थे। कर तू। माथापच्ची कर। पैसे ले-दे तो माने कि मैंने किया। अभिमान किया था। समझ में आया ? यह तो आप का दृष्टांत है, हाँ ! सिर्फ आप की बात नहीं है। (सब की बात है)। भाई ! यह तो नाम देकर स्पष्टता होती है। आहा..हा... ! रोज चलता है। दुनिया में लोग उसी प्रकार (चलते हैं)। युवान हो, जुते ऐसे पहने हो.. हाथ में लकड़ी.. (ऐसे ऐसे चले)। आहा..हा..! भाई ! चमड़ी फट जायेगी, ए..ए..ए.. हो जायेगा। वह तो अस्थिर है।

बिजली और इन्द्रधनुष दो दृष्टांत हैं। समझे ? तीसरा दृष्टान्त दिया है। बादल आये, काले बादल एकसाथ आये। फट.. बरस गये। फिर कुछ नहीं। (बाद में) बादल भी नहीं दिखते। काले बादल चड गये। ओ..हो..हो... ! एक क्षण में खलास। वैसे ये सब बादल चढे थे। बादल समझे ? यह युवान अवस्था परमाणु के बादल है। दल.. दल.. एक क्षण में बिखर जायेगा। तुम मानते हो कि रहेगा। धूलमें भी नहीं रहेगा। आहा..हा... ! मेघ.. मेघ.. बड़ा चड़ता है या नहीं ? कितने काले होते हैं। कहाँ गया ? क्यों गया ?

एक बार अखबार में आया था, बारीश (बहुत आया)। कितना पाक हुआ था। अनाज (बहुत पका था)। एक बादल भी नहीं था और एकदम बादल आये, उसके खेत में गिरा और सब कुछ धूल गया। एक घंटे के बाद बादल का टूकड़ा भी नहीं था। आहा..हा... ! अखबार में आया था। हुआ क्या ये ? एक घंटे पहले खेती का जो दाना था, वह पडा था। सब बैठे थे। बादल नहीं थे, एकदम आये, एकदम गिरा। अनाज सब समाप्त हो गया। एक घंटे के बाद देखो तो बादल का टूकड़ा भी नहीं। अरे..! ये हुआ क्या ? समझ में आया ? ऐसा यह है। क्या है ? दो साल, पाँच साल शरीर युवान दिखे, पैसे, स्त्री (दिखे)। क्षण में बिखर जाते हैं। हाय.. हाय..। फोटो लो (एक्स-रे लो)। शरीर में तो कुछ दिखता नहीं।

मुमुक्षु :- मुद्त लगे...

उत्तर :- धूल में भी मुद्त नहीं लगती। क्षण क्षण में उत्पाद होता रहता है। नयी-नयी

पर्याय , परमाणु में नयी, नयी, नयी होती है। आहा..हा..! पहले जोबन में लिया। समझ में आया ? धम-धम शरीर चले, दो-तीन लड्डु खा जाये। ओ.. करके पलंग पर सो जाये। पलंग पर सोये। कौन है ? भगवान ! सुन तो सही। यह तो जड़ मिट्टी-धूल है। 'बिजली की चमक में मोती पिरो लो तो पिरो लो' बिजली की चमक आयी और चली जायेगी। वैसे युवान अवस्था क्षण में चली जायेगी। २५-२५ वर्ष के देखे हैं। खून नहीं, माँस नहीं। समझ में आया ? आपके (रिश्तेदार) थे ने ? यहाँ आया था। वहाँ जाकर ठीक हो गया था। ऐसे देखो तो मुर्दे की भाँति बैठा था। क्षय लगा हो ऐसा शरीर। बापू ! वह तो परमाणु की (अवस्था है)। बादल की वर्षा है। कब गिरेगा। और कब क्षय होगा, क्षणिक चीज है-ऐसी भावना मुनि भाते हैं, गृहस्थाश्रम में समकिती भाते हैं। पर से उदास होकर भावना करते हैं। अपने में लीनता की एकाग्रता बढाते हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

'**यौवन, मकान...**' दस-दस लाख के मकान। बिजली गिरी। हाँ..! धरतीकम्प 'बिहार' में हुआ था न ! एक करोड़पति.. करोड़पति (था)। घोड़ागाडी लेकर बाहर घूमने निकला था। आठ हजार की घडी साथ में थी, बस ! वापस आया तो मकान, कुटुम्ब, सब (जमीन के) अन्दर, भाई ! वह किस की भाँति है ? इन्द्रधनुष। यानी काचबी। काचबी कहते हैं न ? इन्द्रधनुष और बिजली की भाँति। मकान। चपल है, भाई ! क्षणमात्र रहनेवाला है। यहाँ 'छन थाई' इतना ही कहा है। क्षण थाई है। यह आत्मा भगवान नित्यानन्द स्थायी है। नित्यानन्द प्रभु आत्मा है। उसकी दृष्टि कर। यह तो छिन थाई, क्षणिक रहनेवाला है। थोडी देर में फिर जाये। इज्जत जाये, मकान, दस-दस लाख के पचास-पचास लाख के। फू.. हो जाये। दरार हो गई। ये क्या हुआ ? चार गाँव दूर से नीचे से झटका लगा। १९९४ की साल में लगते थे। 'पालियाद'। नीचे एक माईन (खान) थी। कोयला में से आठ-आठ गाउ दूर 'राणपुर' तक झटके लगते थे न ? सात-सात गाउ दूर तक जमीन टूट जाये। ऐसा झटका अन्दर से (लगे)। क्षणभंगुर (है)। मकान नया बनाया। 'पालियाद' में कितने टूट गये। 'बोटाद' के पास। नीचे से आता था। थोड़े महिने रहा, फिर बंद हो गया। ओ..हो..हो...! समझ में आया ?

देखो ! सब दृष्टान्त दिये हैं, हाँ ! देखो मकान। बड़ा मकान है न ? बैठ जाये। 'मुम्बई' में एक करोड़ का मकान था। एक करोड़ का एक मकान बनाया। दोपहर को मजदूर खाना खाकर

सोये थे। चार सौ मजदूर। अन्दर सीमेन्ट थोड़ी कच्ची थी। (गिर गया)। चार सौ मजदूर समाप्त,

करोड़ का मकान समाप्त। करोड़ रूपये का माकन आधे घंटे में (समाप्त हो गया)।

मुमुक्षु :- वह एक गिर गया, बाकी के सब नहीं गिरे।

उत्तर :- वे सब रहे हैं गिरने लिये ही रहे हैं। कहो, समझ में आया ?

ऐसी भावना करते हैं तो नित्यानन्द आत्मा में उसकी सन्मुखता विशेष बढ़ती है, इसलिये यह भावना करते हैं। (विशेष कहेंगे...) (श्रोता :- प्रमाण वचन गुरुदेव !)